नयी सदी का हिन्दी दलित साहित्य : एक विमर्श

डॉ. धर्मेन्द्रकुमार जे. वडेरा

आज दलित साहित्य का युग है। भारत के सभी भाषाओं में दलित रचनाएँ हो रही हैं। साहित्य के सभी विधाओं में इसका बोलचाल चल रहा है। ऐसा कहने में अतियुक्ति न होगी कि इक्कीसवीं सदी हिन्दी साहित्य दलित साहित्य की सदी है। आज यह साहित्य सबकी मान्यता प्राप्त कर कर रहा है। बकौल हिंदी दलित साहित्य के प्रमुख स्तंभ डॉ.जयप्रकाश कर्दम जी आज के दलित साहित्य की स्थिति यह है कि "दलित लिरोधी होकर कोई साहित्यकार साहित्य जगत में अपना सम्मान जनक स्थान नहीं बना सकता।"[1] हिन्दी दलित साहित्य के औचित्य, अवधारणा, सोच, कलात्मकता आदि को लेकर कई विचार–विमर्श हुए हैं। दलितों का सब कुछ गैर-दलितों से भिन्न है, उनका साहित्य भी लभन्न है। यह परंपरागत साहित्य का विरोधी होने के कारण विद्रोही साहित्य भी कहा गया है। दलित शब्द किसी एक जाति सूचक मानकर आपत्ति उठायी गयी है। कुछ राज्यों में इस शब्द के प्रयोग पर निषेधाज्ञ भी जारी की गयी हैं। दलित लेखकों को जातिवादी होने का आक्षेप हुआ है। ऐसी हालत में दलित शब्द पर दलित साहित्य के उद्देश्यों पर दृष्टिपात करना जरूरी है। हिन्दी दलित साहित्य के वरिष्ठ रचनाकार मोहनदास नैमिशराय ने दलित शब्द को मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द का समानार्थी बताया गया है। दलित शब्द किसी एक जाति का सूचक नहीं है। दलित शब्द की व्युत्पत्ति 'दल' धातु से हुई, जिसका अर्थ है पिछडा, शोषित, रौंदा हुआ, दबाया गया, कुचला हुआ, अविकसित, अछूत आदि। डॉ. भरत धोंडीराम सगरे लिखते हैं कि "स्पष्ट है- शोषित मानि दलित है। शेड्यूल्ड कास्ट, डिप्रेस्ड क्लास को भी दलित माना है। जाति व्यवस्था का एक समूह, विशिष्ट वर्ग, वाचक शब्द, उपेक्षित जन, विद्रोही मानव दलित है।"[2] दलित हाशिये की जनता का पर्यायी शब्द है। दलित शब्द का प्रयोग फुले, डॉ.बाबा साहब अंबेडकर और कई समाज सुधारकों ने इसी व्यापक अर्थ में किया है। इसमें दलित चेतना का आभास होता है। दलित शब्द सर्वहारा जाति के अस्मिता का द्योतक है।

सामाजिक उत्खनन की तीव्रता ही हिन्दी दलित साहित्य के जन्मधात्री है। दलित साहित्यकारों ने स्वयं अपनी वेदना , पीडा एवं जीवनानुभवों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। यह शोषित, पीड़ित, हाशिये पर ढकेल दिये उस जनता का साहित्य है, जो सदियों से वंचित, कुचला रखा है। यह स्वानुभूति का साहित्य है। सदियों से सहते आये हुए दर्द की कराह इसमें है। हाशिये की जनता के दु:ख, दर्द, पीडा और संघर्ष का चित्रण हमें गैर-दलित लेखकों में भी देखा जाता है, किन्तु उनकी संवेदना में सहानुभूति की है। दलितों के प्रति दया दिखायी गयी है। यह सहानुभूति दलितों की किसी काम की नहीं है। इनके लेखन में दलितों के दर्द-पीड़ा की मुक्ति का उपाय नहीं सूझता है। बकौल हिन्दी दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर मोहनदास नैमिशराय जी "समाज में युग-युगों से आम और खास लोग रहते आ रहे हैं। पहले के साहित्य में कभी राजा-रानियों का चित्रित और प्रशंसित किया जा रहा तो कभी भूत–पिशाच, गुरु-चेला, मंत्र जादू को। साहित्य के नाम पर उच्च

कुलोत्पन्न नायक और नायिकाओं का बढ़ा-चढ़ाकर गुनगान किया गया। आम आदमी के दु :ख, सुख, सम्मान, आवश्यकता, अनुभूति और सनातनी ब्राह्मणवादी साहित्य में स्थान नहीं पा सके; सामाजिक परिवर्तन में जब आम आदमी मुखर और गतिशील हुआ तब दलित साहित्य आम आदमी के सुख-सम्मान, दु:ख–दर्द, आवश्यकता, अनुभूति का बिगुल बजाता हुआ पैदा हुआ।"[3] हिन्दी दलित साहित्य परिवर्तनगामी साहित्य है। इसका मूल प्रेरणा स्रोत बाबा साहब डॉ. बी. आर. अंबेडकर और बौद्ध दर्शन है। कोई भी रचना इन मानदंडों के आधार पर हो वह दलित साहित्य कहलाता है। यह हाशिये की जनता का जिवंत दस्तावेज है। यह अपना अलग इतिहास का पात्र बनता जा रहा है। दलित की चिंता आज न केवल भारत में की जा रही है बल्कि विश्व में है। मान्य प्रो. टी.वी. कट्टीमनी जी लिखते हैं कि "आजाद के बाद दलितों को क्या मिला ? यह प्रश्न प्रश्न ही रह गया है। क्योंकि आजादी के बाद भी दलित आजाद नहीं हो पाए हैं , राष्ट्रीय स्तर पर भी नहीं, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी भारतीय दलितों की समस्याओं के प्रति चिंता व्यक्त की जा रही है।"[4] दलित साहित्य का स्वर विक्षुब्ध है। इसमें आक्रोश, विरोध और नकार है। कभी-कभी यह विध्वंसात्मक होता दिखाई देता है। विद्रोही स्वर इसकी रीढ है। दलित साहित्य का केंद्र बिंदु न राजा है, न रानी और न उच्च कुलोत्पन्न महापुरूष है। यह आम आदमी के जीवन का दर्पण है। पीड़ित, शोषित, दीन-हीन, आम जनता के सुख-दु:ख, अभाव, रीना-झींकना और दलितों की आवश्यकताओं का दर्द, बिछोरता, साहित्य का रास्ता बदलता, इक्कीसवीं सदी में दलित साहित्य प्रवाहमान है। आम आदमी के सुख-सम्मान को ऊँचे शिखर तक ले जाने में बेचैन है। दलित साहित्य के उद्देश्यों के बारे में डॉ.जयप्रकाश कर्दम जी लिखते हैं कि "दलित साहित्य का उद्देश्य शोषित और सुषुप्त मानस को अपने अमानवीय अधिकारों के प्रति सजग बनाना और संघर्ष के लिए प्रेरित करना है।....साहित्य का असली उद्देश्य समाज का निर्माण करना तथा उसमें एकता और सद्भाव बनाये रखना है। जबकि देवभाषा की संस्कृति और इसमें लिखा साहित्य समाज का निर्माण करने में असमर्थ है। समाज समानता पर आधारित होता है, जबकि वर्ण व्यवस्था को जन्म देनेवाली तथा स्पृश्यता का विधान बनानेवाली देवी-संस्कृति का आधार अमानता है।"[5] दलित साहित्य जनवादी साहित्य है। समाजिक अमानताओं को दूर कर भ्रातृत्व की भावना एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना करने की दिशा में दलित साहित्य अग्रसर है। हिन्दी दलित साहित्य के अपवाद है कि हिन्दी में दलित साहित्य मराठी का नकल है। मोहनदास नैमिशराय जी इसका विरोध करते हिन्दी दलित साहित्य का अस्तित्व मराठी से पूर्व मानते हैं। दलित साहित्य का विमर्श तो इसी सदी का है लेकिन इस साहित्य का लेखन बहुत पहले का है। गौतम बुद्ध के समय से गिना जाता है। कबीरदास, रैदास, नामदेव, तुकाराम, नाथ, सिद्धों की रचनाएँ इसी कोटि के हैं। प्रो. चमनलाल लिखते हैं कि "डॉ. एन सिंह दलित चेतना पहला विस्फ़ोट मध्यकाल के संत साहित्य में मानते हैं। आधुनिक काल में स्वामी दयानंद, विनोबा भावे तथा गाँधी के दलित संबंधी चिंतन को एक धारा में मानते हैं, रैदास, अंबेडकर और महात्मा फुले को दूसरी धारा में मानते हैं। पहली धारा दलितों को हिन्दू धर्म व सम्मान के दायरे में रखते हुए जीवन की स्थितियों में सुधार की आकांक्षी है, जबकि दूसरी धारा समाज में अपना सम्मानजनक स्थान एक अधिकार के रूप में लडकर प्राप्त करना चाहती है।"[6] आज दलित साहित्य को विश्व के मानवतावादी साहित्य के अभिन्न अंग के रूप में देखा जाता है। इसकी अवधारणा एक व्यापक अवधारणा है। इसे जातिगत दायरे में रखना एक तरीके से साहित्यिक धारा के वस्तुगत रूप को नुकसान पहुँचना ही ठहरता है।

दलित साहित्य में बाबा साहब डॉ .अंबेडकर की विचारधारा की व्यापकता है और मुख्य धारा भी। इसे देख यह विमर्श किया जाता है कि दलित साहित्य में राजनीति ज्यादा है, साहित्य बहुत कम है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। जिस तरह की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ होती हैं वैसे ही साहित्य का लेखन होता है। साहित्य में विभन्न प्रकार के परिस्थितियों का समर्थन और विरोध दोनों स्वर मौजूद होते हैं। दलित साहित्य की बात भी यही है। दलित साहित्य की भाषा गाली–गलौच की है। यह इस साहित्य की अपनी एक विशेषता के रूप में देखना ही सही है।

दलित साहित्य कल-कल बहती नदी की तरह गतिशील है। उसकी दिशा भी दलित समाज की दिशा है। मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं कि "दलित पहले ही जातिवाद और छुआछूत के खिलाफ अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा था। अब उसे निजीकरण, उदारीकरण और भूमंडलीकरण की आर्थिक, सामाजिक गुलामी के खिलाफ दोहरे संघर्ष गुजरना पड रहा है।"[7] दलित साहित्य आज हिन्दी साहित्य की सशक्त धारा है। साहित्यिक गरिमा इसमें देखी जाती है। साहित्य में हजारों सालों से उपेलक्षित समाज का दूसरा पक्ष है। इससे हिन्दी साहित्य गरिमा बढ़ गयी है और समृद्ध भी हुई है। स्वामी विवेकानंद जैसे महान धार्मिक चिंतकों की भविष्यवाणी सत्य साबित होते नजर आ रही है कि 'दलित जागरण से ही भारत की मुक्ति संभव हो पाएगी।' देश के कोने-कोने से दलित जागरण की आहटों का प्रभाव साहित्य में दलित साहित्य की विशिष्ट प्रवृत्ति के रूप में उभरा है। इक्कीसवीं सदी के दलित साहित्य दलित वर्ग द्वारा बौद्ध धर्म को दलित अस्मिता का सांस्कृतिक प्रतीक बनने की दिशा में और मानवीय मूल्यों की स्थापना करने की आर्य साधना में क्रियाशील दिखाई देता है।

सन्दर्भ सूची

1.डॉ. जयप्रकाश कर्दम जी, दलित साहित्य एवं चिंतन समकालीन परिदृश्य, पृष्ठ-103.
2. डॉ.भरत धोंडीराम सगरे, इक्कीसवीं सदी का दलित साहित्य पृष्ठ-10.
3. मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ-318.
4. प्रो. टी. वी. कट्टीमनी, दलित साहित्य का सामाजिक विज्ञान, पृष्ठ-206.
5. डॉ. जयप्रकाश कर्दम जी, दलित साहित्य सामाजिक बदलाव की पटकथा, पृष्ठ13 & 14.
6. प्रो.चमनलाल, दलित साहित्य एक मूल्यांकन, पृष्ठ-42.
7. मोहनदास नैमिशराय जी, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ-298.